Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 6, August-2018, ISSN 2230-7540

भारत में सती प्रथा की ऐतिहासिक पृष्टभूमि

Anubha Singh[1]* Dr. Rajiv Nayan[2]

[1] Researcher, Post-Graduate History Department, Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar

[2] Associate Professor, Jagjivan College, Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar

सार : ***प्राचीन भारत में पति की मृत्यु के बाद विधवा स्त्री द्वारा पति का अनुगमन करने के उद्देश्य से स्वदाह करने की प्रथा की प्राचीनता के विषय में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है।***

हिन्दू धर्म के चार वेद- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद, इन चारों वेद में से किसी भी वेद में स्त्री को सती करने जैसी व्याख्या शामिल नहीं है। शास्त्रसम्मत कथा के सूक्ष्म अवलोकन कर हम पाते हैं की शिवं कि पत्नी "देवि सति" और पांडू कि पत्नी "माद्री", दोनों घटनाओं में से किसी को भी धार्मिक रंग नहीं दिया जा सकता। सती अनुसुया, सती अहिल्या और सती सीता में से भी किसी को न उनके पति के साथ गया था और ना ही उनकी इच्छा के खिलाफ़ उन्हें सती हो जाने का आदेश दिया गया था।

कुछ इतिहासकार, "जौहर प्रथा" को, जिसमें राजपरिवार कि महिलाये खुद क़ो आक्रमणकारी मुग़लों के द्वारा बलात्कार किये जाने या रखैल बना लिये जाने की तुलना में आत्म्हत्या को श्रेष्ठक मानती थीं, को सती प्रथा का मूल मानते हैं। वहीं कुछ का मत है कि सती को शायद भारत में सीक्थी आक्रमणकारियों द्वारा भारत लाया गया था। अन्य इतिहासकार भारतीय परंपराओं को ही "सतीप्रथा" की उत्त्पत्ति का मूल मानते हैं।

परंतु उपरोक्त कोई भी एक मत सभी इतिहासकारों द्वारा स्विकार्य नहीं है, अतः यह तर्कसंगत हो जाता है की हम भारत में सती प्रथा की एतिहसिक्ता का अवलोकन अभिलेखीय प्रमाणों के आधर पर करें।

मुख्य शब्द : सती, सती प्रथा, विधवा, जौहर, जौहर प्रथा।

----------X----------

मुख्य आलेख:

सती संबंधित ऐतिहासिक पृष्टभूमि का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि हिन्दू धर्म में ऐसा कहीं नहीं लिखा है कि पति की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी को उसकी जलती हुई चिता पर बैठकर भस्म होना है। हिन्दू धर्म के चार वेद- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद इन चारों वेद में से किसी भी वेद में स्त्री को सती करने जैसी व्याख्या शामिल नहीं है। दास (1994) के अनुसार भी वैदिक युग में ऐतिहासिक ग्रंथों में सती का कोई उल्लेख नहीं है।

सती शब्द का उल्लेख पुराणों में दर्ज एक कथा में किया गया है। भगवान शिव की पहली पत्नी का नाम सती था जिन्हें 'देवी सती' के नाम से पुकारा जाता था। देवी सती ने अपने पिता दक्ष द्वारा अपने पति भगवान शिव के तिरस्कार से व्यथित हो यज्ञ की अग्नि में कूदकर आत्मदाह कर लिया था।लेकिन उनके द्वारा आत्मदाह करने का यह फैसला उनके पति भगवान शिव के जिंदा रहते ही लिया गया था। जबकि सती प्रथा में पति की मृत्यु के बाद पत्नी सती होती है या किया जाता है।

द्वापर युग की एक और कथा में सती हो जाने जैसी बात कही गई है। महाभारत युग के पांच पांडव के पिता पाण्डु की दो पत्नियां थी - माद्री और कुंती।पाण्डु की मृत्यु को माद्री ने खुद को अपने पति की मौत का कारण माना, क्योंकि पाण्डु ने ऋषि के श्राप1 की अवमानना कर माद्री के साथ शारीरिक संबंध2 बनाया और माद्री ने भी जानकारी को उत्तेजनावश नज़रंदाज़ कर संबंध में सहयोग दिया था, जो पाण्डु के मौत3 का कारण बना। शास्त्र बताते हैं कि माद्री को सती न होने के लिये लोगों द्वारा बहुत समझाया गया पर माद्री सभी को अपने तर्कों4,5 द्वारा चुप करा कर सती6,7,8 हो गई। यह बहुत कुछ ऐसा ही था जैसे आज के जमाने में भी प्रेमी-प्रेमिका साथ में

www.ignited.in

आत्महत्या कर लेते हैं अथवा एक के गुज़र जाने के बाद दूसरा भी मर जाता है या आत्महत्या कर लेता है। इसलिये इन दोनों घटनाओं में से किसी को भी धार्मिक रंग नहीं दिया जा सकता। दोनों के दोनों एक भावनात्मक घटना थी न कि धार्मिक।

इतिहासकार भी इस संदर्भ में मतैक्य नहीं हैं।

कुछ इतिहासकार, जौहर प्रथा को सती प्रथा का मूल मानते हैं,इस प्रथा के अंतर्गत एक बड़े से गड्ढे में आग जला दी जाती थी जिसमें महिलायें कूदकर आत्महत्या कर लेती थीं।

इस मत के अनुसार मुस्लिम काल 12 वें से 16 वें शताब्दी) में, राजपूतों और राजपरिवार, विशेष रूप से चितौड़गढ़, की महिलाओं ने खुद को बलात्कार से बचाने के लिये जौहर का वरण किया। क्योंकि इन्होंने युद्ध में अपने पति की हार या मृत्यु के बाद मुगल आक्रमणकारियों द्वारा खुद का बलात्कार किये जाने या खुद को रखैल बना लिये जाने की तुलना में मृत्यु को श्रेष्ठक माना। इन आक्रांताओं के हाथ जब राजपरिवार की महिलायें नहीं लगती तो ये राज्य कर्मियों के घर की महिलाओं को अपना शिकार बनाने लगे। जिस कारण राज्यकर्मियों के घर की महिलायें भी राजपरिवार की महिलाओं के साथ जौहर करने लगी।

यह व्यक्तिगत "जौहर" धीरे धीरे "सामाजिक नियम" सा बन गया। जिसमें पति की सामान्य मृत्यु के उपरांत भी पत्नियां अपने मृत पति के साथ चिता में जलने लगी। "जौहर" अब "सती प्रथा" बन चुका था।आगे चलकर, इसमे "स्वेच्छा" का स्थान "जोरजबरजस्ती" ने ले लिया। धीरे-धीरे भारत में इन प्रथाओं ने अपना दायरा फैलाना शुरू कर दिया। ना केवल पूर्वी भारत बल्कि पश्चिम में भी सती प्रथा का कहर बढ़ने लगा।

एक दूसरे मत के अनुसार सती को शायद भारत के सीक्थी आक्रमणकारियों द्वारा भारत लाया गया था। उनका ऐसा मानना इसलिये है क्योंकि भले ही सती को एक भारतीय रिवाज या एक हिंदू रिवाज माना जाता है, लेकिनअपने मृत पति केचिता में विधवा का बलिदान करना केवल भारत के लिए अद्वितीय नहीं था। कई प्राचीन समुदायों में यह एक स्वीकार्य विशेषता थी। यह रिवाज मिस्र, ग्रीक, गॉथ, सीक्थी और अन्य लोगों के बीच प्रचलित था। इन समुदायों के बीच यह मृत राजा को अपनी मालकिनों या पत्नियों, नौकरों और अन्य चीजों के साथ दफनाने का रिवाज था ताकि वे अगली दुनिया में उसकी सेवा कर सकें।किंतु जब येसीक्थी भारत पहुंचे (स्किथी या स्किथाई :अंग्रेजी:Scythian' यूरेशिया के स्तेपी इलाक़े कि एक प्राचीन ख़ानाबदोश जातियों के गुट का नाम था। ये प्राचीन ईरानी भाषाएँ बोलते थे और इनका भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग पर एक गहरा प्रभाव पड़ा है।) तो उन्होंने अंतिम संस्कार की भारतीय प्रणाली को अपनाया, जो मृतकों का अंतिम संस्कार कर रही थी। और इसलिए उन्होंने अपने राजाओं और उनके सेवकों को दफनाने के बजाय अपने जीवित प्रेमियों(पत्नी और सेवक) के साथ दाह संस्कार करना शुरू कर दिया। सीक्थी योद्धा जनजाति थे और उन्हें हिंदू धार्मिक पदानुक्रम में योद्धा जातियों का दर्जा दिया गया था। माना जाता है कि राजपूत वंशों में से कई की उत्पत्ति इन्ही सीक्थीयों से हुई थी। बाद में अन्य जातियों ने, जिन्होंने योद्धा या उन से ऊपर होने का दावा किया, ने भी इस प्रथा को अपनाया। भारत में भी इस प्रकार की प्रथा का होना जिसमे पत्नियों और नौकरों(जिसमें नर सेवक भी शामिल होते थे) को शासक की संपत्ति के रूप में माना जाता था, इस सिद्धांत को बल देता है कि सती को भारत में सीक्थी आक्रमणकारियों द्वारा लाया गया था।

अन्य इतिहासकार भारतीय परंपराओं को ही "सतीप्रथा" की उत्त्पत्ति का मूल मानते हैं।उनके अनुसार पारंपरिक हिंदू समाज में विधवाओं के सामने आने वाली कठिनाइ ही सती के प्रसार का कारण बनी। भारतीय समाज में विधवाओं पर कई प्रकार के सामाजिक प्रतिबंध थे, जिन्हें एक दृष्टि से अमानवीय भी कहा जा सकता है, साथ ही साथ विधवाओं को समाज में हेय दृष्टि से भी देखा जाता था।इसके उलट, सती को समाज में बहुत सम्मान प्राप्त था। समाज सती को देवी का दर्जा देता था। उनके कई मंदिर भी बने हैं। सती के साथ साथ वो परिवार जिसमें कोई स्त्री सती हुई हो, उस परिवार को भी समाज में बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। इन इतिहासकारों के मतानुसार भारतीय समाज में महिलाओं का सामाजिक नियंत्रण भी इन इतिहासकारों को विश्वास दिलाता है कि सती एक विधवा के लिए एकमात्र विकल्प था। एक पुरुष-प्रधान समाज में जिसमें अनासक्त महिलाओं को उसके समुदाय के लिये एक गंभीर खतरा माना जाता हो, जिस समाज में ये पूर्व-धरना हो कि"स्त्रियोंके पास कथित रूप से अपूरणीय यौन शक्तियां होती हैं"(सरकार एवं सरकार, 2008: 20) सती ही सबसे उपयुक्त विकल्प हो सकता है ताकि वह "दूसरों के आध्यात्मिक कल्याण के लिए खतरा उत्पन्न न करे" (सरकार एवं सरकार, 2008: 21) और सती होकर "अपने लिये, अपने मृत पति और अपने परिवार के लिये सम्मान का कारण बने"(सरकार एवं सरकार, 2008: 21) । माता-पिता अपनी बेटियों को "वैवाहिक घर में हर कीमत पर समायोजित" करने के लियेराजी करते हैं (किश्वर, 2002: 55) और अपने बेटियों पर उसके पति द्वारा किये गये दुर्व्यवहार को स्वीकार कर इन मानदंडों को और अधिक संस्थागत रूप से बल देते हैं। परिणामस्वरूप "वे भी उस आदर्श का समर्थन कर रहे होते हैं जिसके अनुसार एक महिला का जीवन बेकार है"। (किश्वर, 2002: 55) संछिप्त में, इन इतिहासकारों के मत अनुसार

www.ignited.in

भारतीय सामाजिक ताना बाना ऐसा रहा जिसमें एक विधवा के लिये, सती ही एकमात्र व्यवहार्य विकल्पथा।

एक तथ्य ये भी है कि सती, व्यापक रूप से भारतीय समाज में कभी भी स्वीकार्य नहीं रहा पर मुख्यतः कुछ ब्राह्मण और दूसरे युद्धरत जातियां और राज परिवारों में प्रचलित रहा जिनमे ये प्रथा स्त्रीका अपने पति के प्रति पूर्ण समर्पण के आदर्श के रूप में देखा जाता था। कुछ छिटपुट घटनायें बनिये और कायस्थ जातियों में भी देखी गई। शूद्रों में ये रीति कभी भी जमीन नहीं पकड़ पाई, जिसका ये कारण शायद मुख्य कारक रहे कि उनमें पुनर्विवाह सदा से प्रचलित रही। भारत की सभी जातियों में इस प्रथा का प्रसार न होने के पीछे का कारण शायद ये रहा हो कि हिंदू धर्म, ईसाई धर्म या इस्लाम की तरह कोई एक धार्मिक किताब का पालन नहीं करता है।इसलिये विभिन्न हिंदू समुदाय विभिन्न सामाजिक प्रथाओं का पालन करते हैं, इनमें से कई का उल्लेख किसी भी पाठ में नहीं किया गया है। इस कारण संभव है कि कुछ समुदायों यानी राजपूत, दूसरों की तुलना में एक विशिष्ट अनुष्ठान का पालन करते हों। गौतम बुद्ध और भगवान महावीर जैसे समाज सुधारकों द्वारा भी "सतीप्रथा" पर कभी भी कोई टिप्पणी न किया जाना और न ही इस पर कोई सुधार कार्य किया जाना इस तथ्य की पुष्टि करता है कि ऐतिहासिक भारतीय समाज में सती प्रथा का बहुत व्यापक स्वीकारता नहीं थी, शायद कभी कभार कोई संबंधित घटना हुआ करती होगी।

आइये अब हम भारत में सती प्रथा के एतिहसिक्ता का अव्लोकन अभिलेखीय प्रमाणों के आधर पर करें

भारतीय इतिहास में सतीप्रथा के अभिलेखीय प्रमाणों में एरण अभिलेख के साक्ष्य को प्रथम स्थान प्रदान किया गया है। गुप्त संवत् 191 (510 ई0) के एरण अभिलेख में वर्णित गोपराज जिसे माधवराज का पुत्र और शरभराह दौहित्र कहा गया है, ने भानुगुप्त की सामरिक मदद की और युद्ध में मारा गया तब उसकी विधवा पत्नी ने पति की चिता पर आत्मदाह कर लिया9 था।

वहाँ की स्थानीय जनता आज भी इस स्मारक की पूजा सती स्मारक के रूप में करती है।[10] शूद्रक ने मृच्छकटिकम् (जिसकी रचना 500 ई0 माना जाता है) के दशवें अंक में चारूदत्त की पत्नी 'आर्याधूता' द्वारा अपने पति के मृत्युदण्ड की बात सुनकर के अग्नि में प्रवेश करने का वर्णन किया है।[11] जिसमें रानी के साथ उसकी सेविका व पुत्र 'रोहसेन' तथा सेवक भी की अग्नि प्रवेश की इच्छा करते हैं।

बाणभट्ट ने भी स्वकालीन समाज में विधवादाह प्रथा की ओर संकेत किया है। कादम्बरी में वर्णन है की महाश्वेता अपने प्रेमी पुण्डरीक के मरने पर उसका अनुगमन न कर पाने के कारण अत्यंत आत्मग्लानि का अनुभव करती है। महाश्वेता अपने आप को पापिनी, शुभलक्षण रहित, निर्लज्ज, कठिन प्रवृत्ति वाली, स्नेहरहिता, नृशंस, निंदनीय, प्रयोजनरहित उत्पन्न हुई, निष्फल जीनधारिणी,अनाथ, निराधार और दुःखी बताती है।[12] इस दुःख और निन्दा से बचने के लिये यशोमती स्वयं अपने पति का मरण निश्चित जानकर, जीवित पति के होते हुए भी अपने पति प्रभाकर वर्धन की जीवितावस्था में पुत्र एवं परिजनों द्वारा रोके जाने पर भी मरण निश्चय कर, सरस्वती नदी के किनारे अग्नि में प्रवेश कर गई।[13]

राजश्री भी अपने पति ग्रहवर्मा के मारे जाने पर अवसर मिलने पर विंध्याटवी के वनों में अनुमरण का प्रयत्न करती है। यही नहीं बाणभट्ट ने अपनी 'आलंकारिक' शैली में उपमान साधन में अनुमरण प्रसंगों की बार-बार कल्पना की है। जो इस प्रथा के प्रचलन की ओर संकेत करता है। हर्ष, अपने द्वारा रचित नाटक प्रियदर्शिका में विंध्यकेतु की विधवाओं के अनुमरण का उल्लेख करते हैं।[14] नागानन्द में सहमरणोद्ध्त जीमूतवाहन की विधवा मलयवती के भावोद्रेक का वर्णन है।[15]

10वीं से 12वीं शताब्दी के बीच उत्तर भारत के वीर क्षत्रिय और लड़ाकू जातियों की ही नहीं बल्कि निम्न वर्ग की विधवा स्त्रियों ने भी पति का सहगमन किया।[16] हालाँकि शूद्र वर्ग में विधवाओं द्वारा सती होने के उदाहरणों का अभाव दिखता है, क्योंकि उनमें पुनर्विवाह की सामान्य रूप से मान्यता थी। इस काल में क्षत्रिय वर्ग में सती होने की घटना का बाहुल्य है। सोमदेव ने कथासरित्सागर की कतिपय कहानियों में विधवा स्त्री के द्वारा चितारोहण का उल्लेख किया है। इनमें अयोध्या स्थित वणिक - पुत्री रत्नवती द्वारा मनोवृत वर (चोर) का अनुगमन करना।[17] और कौसलाधिपति की पतिव्रता नारी 'अरून्धती' के पूर्वजन्म में अपने ब्राह्मण पति देवदास के साथ का अनुमरण[18] दृष्टान्त, महत्त्वपूर्ण है।

अलबरूनी[19] और सुलेमान द्वारा दिये गये विवरणों से इस कृत्य के प्रचलन को समर्थन प्राप्त होता है। ब्राह्मणी - विधवाओं के पति के शव के साथ जलने का भी समर्थन किया जाने लगा था।[20] विवेचित काल में विधवा - स्त्रियों द्वारा पति का अनुगमन करने के पीछे स्त्री का पतिव्रत आदर्श का

निर्वाह करना जान पड़ता है। पति को देवता तुल्य मानने की विचारधारा, इसे पुष्ट करती है।

वर्णित काल के अभिलेखिक प्रमाणों से और जिन विधवाओं के अपने पतियों के अनुगमन के प्रमाण मिलते हैं, उनमें राणुक की सती सांवल देवी (वि0संवत् 947 घटियाला अभिलेख)[21], ठाकुर गुहिल की पत्नी (पुष्कर अभिलेख)[22], धोलपुर के चण्डमहासेन की माँ 'सती कणहुल्ला[23], राणा मोतीश्वर की सती पत्नी मोहिली राजी[24], मांगलिया शव सीहो की पत्नी हम्मीर देवी आदि का नाम उल्लेखनीय है। इसके अलावा संवत् 1244 के पात्र अभिलेखों और चरलू के शिलास्तम्भों में भी अनुगमन करने वाली विधवा स्त्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है।[25]

नौंवी एवं दसवीं शताब्दी में, सती स्त्रियों की यादगार में स्मृति पत्थर स्थापित किएजाने लगे थे, जो राजस्थान क्षेत्र में बहुत अधिक प्राप्त होते हैं। इन्हें देवाली नाम दिया गया था। विल्सन लिखते है कि प्रारंभिक पर्यटकों द्वारा दक्षिण में सामूहिक - चितारोहण की अनेक घटना देखी गई थी। उदयपुर में होड़ावर में मेवाड़ के राजाओं की समाधियों की छतरियाँ बनी हुइ हैं। एकलिंग जी के आकर की मूर्तियाँ समाधिकेन्द्र में स्थापित हैं। उस समय जितनी रानियाँ राजा के साथ सती होती थी, उतनी ही आकृति, शिवलिंग के पास ही, एक दूसरे पाषाण खण्ड पे बना दी जाती थी।[26]

राजशेखर (लगभग 880-920 ई0) ने उत्तर भारत के राजपूतों में सतीप्रथा के प्रचलन का विशेष रूप से उल्लेख किया है।[27] चेदि राज्य में इस प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं। डाहल के कलचुरि राजा गांगेयदेव की सौ रानियों द्वारा अग्नि में प्राण परित्याग का संदर्भ महत्त्वपूर्ण है, जबलपुर अभिलेख के द्वारा इसकी पुष्टि होती है।[28] टीकाकार अभयदेव ने उन चालुक्य - पुत्रियों के साहस की प्रशंसा की है, जो अपने पति के मृत्यु पर अग्नि में प्रवेश कर अपने प्राणों का परित्याग करती थीं।[29]

उल्लेखनीय है कि कुछ परिस्थितियों में सती प्रथा सभी वर्णों की विधवाओं के लिये निषिद्ध थी। यदि विधवा स्त्री गर्भवती हो या वो अल्पवयस्क शिशु की माँ हो तो समाज उसके आत्मदाह किये जाने का पक्षधर नहीं था। देवणभट्ट ने इसे एक क्रूर कृत्य कहा और "सती" की निंदा की है।[30] सोमेश्वर की मृत्यु होने के उपरांत पृथ्वीराज तृतीय की माता कर्पूरदेवी अपने बच्चों की देखरेख हेतु जीवित रही। विग्रहराज चतुर्थ की रानी ने इन्हीं कारणों से आत्मदाह नहीं किया। गढ़ (अलवर) की रानी "केलच्चदेवी" को चिता से सचिवों और हितैषियों ने बचा लिया था।[31]

सन् 1081 ई0 में राजा अनन्त देव की पत्नी रानी सूर्यमती ने वितस्ता नदी पर पहुँचकर चिता में आत्महुति दीया था।[32] शंकर वर्मा[33] (883-902 ई0) के मरने के बाद, सुरेन्द्रवती सहित तीन विधवाओं ने कृतज्ञ राजा जयसिंह और कुछ कृतज्ञ राजकर्मचारियों[34] तथा लाड तथा वज़सार नामक भृत्यों के साथ राजा का अनुगमन किया था।[35]

पूर्व मध्यकाल में आबू, मालवा, जालौर (किराडू), भिनमताल और वागड़ के परमारों के इतिहास में इस काल, 900 से 1200 ई0 के बीच, कम से कम अभिलेखिक स्रोतों से विधवा रानीयों के आत्मदाह की घटना का कोई प्रमाण नहीं मिलता|[36] राष्ट्रकूटों का इतिहास सतत् संघर्षों का इतिहास रहा था, इसमें कुछ राजा युद्ध स्थल में असमय मारे भी गये थे और कुछ की स्वाभाविक मृत्यु हुई थी, किंतु किसी भी विधवा द्वारा मृत पति के अनुगमन किये जाने का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।[37]

दक्षिण के चोल राजाओं के इतिहास में "विधवा" दाह का प्रचलन छिटपुट प्राप्त होता है। चोलों के अधीन तमिल क्षेत्र के वीर शोल इलंगोवेलार की पत्नी गंगमादेवियार द्वारा पति की मृत्यु पर चितारोहण करने के पूर्व एक दीपक के लिये अक्षयनिधि दान किया गया था। यह घटना संभवत: परान्तक - प्रथम के काल की है।[38] सुन्दरचोल (956 -73 ई0) की स्वर्णमहल (कांचीपुरम्) में मृत्यु के बाद उसकी रानियों में से एक "वानवन-महादेवी", जो मलैयमानों के वंश की राजकुमारी भी थी, सती हुई थी।[39] उसके यशस्वी पुत्र राजराज प्रथम के शासन कालीन तमिल अभिलेख में, (जो तिरूवालंगाडु के ताम्रपत्रों के पूर्व का है), में इस घटना का विस्तार से वर्णन किया गया है।[40] उसमें इस आत्मदाह की प्रशंसा है। इस विधवा रानी की पुत्री कुंदवै तथा तंजौर में, मंदिर में इसकी प्रतिमा स्थापित किये जाने का उल्लेख मिलते हैं।[41] दूसरी विधवा रानी, चेर राजकुमारी, अपने पुत्र राजराज के शासनकाल के 16वें वर्ष (1001 ई0) तक जीवित थीं। राजेन्द्र चोल की अनेक रानियों का उल्लेख अभिलेखों में है, उनमें त्रिभुवन महादेवी (बानवन-महादेवियार) मुक्को-विकलान, वीरमादेवी और पंचबनमादेवियार मुख्य हैं। इनमें से वीरमादेवी के राजा की मृत्यु (1044ई0) उपरांत आत्मदाह करने का प्रमाण मिलता है।[42]

कर्नाटक क्षेत्र में विधवा-दाह की तीन घटनाओं की परिचय प्राप्त होती है। इनमें एक राजपरिवार से तथा दो का साधारण परिवार से संबन्ध है। 1057 ई0 में किसी एक साधारण व्यक्ति ने मल्ल प्रतियोगिता में राजापरिवार से सम्बंधित एक व्यक्ति को मार डाला, जिसके लिए उसे मृत्युदण्ड दिया गया। उसकी पत्नी "देकब्बे" जो नुंगनाड के सरदार की बेटी थी, ने अपने संबंधियों

www.ignited.in

के तीव्र विरोध के बावजूद अपने मृत पति का अनुगमन किया था। एक कनन्नड़ कविता में इसका करूण विवरण मिलता हैं।[43] दो अन्य घटना 1067 और 1068 ई0 की हैं, इसमें एक का तथ्यपरक उल्लेख है,[44] जबकि कुछ दूसरे लेख में इसका प्रसंगतः उल्लेख हुआ है। इस लेख अनुसार मृत दंपत्ति के पुत्र ने उनकी याद में एक अक्षय निधि की स्थापना कीया था।[45] 1088 में मैसूर के एक पिता ने अपने पुत्र और सती होने वाली विधवा पुत्रवधू की स्मृति में दान दिया था।[46] एक अन्य अभिलेख में भी सती प्रथा की चर्चा मिलती है, जिसमें विधवा स्त्री सती होने से रोकने वालों को कोसने का वर्णन है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर यही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि इस काल में दक्षिण भारत में भी विधवा-दाह की प्रथा छिटपुट ही सही पर थी, इस तरह कि घटनाये ज्यादातर उत्तर भारत में घटा करती थी। साथ ही साथ उस समय का पूरा समाज इसका प्रबल पक्षधर नहीं था। इसको रोकने का प्रयास भी जारी था। सती-प्रथा की घटनाएँ प्रायः राजपरिवार से सम्बंधित थीं, जन साधारण में इसका प्रचलन कम ही था।

संदर्भ सूची :

1. आदिपर्व 109, पृ0 27-30..
2. तत्रैव 116, पृ0 2-10.
3. तत्रैव 116 पृ0 11-12.
4. तत्रैव 116, पृ0 23-24..
5. आदिपर्व 116, पृ0 25-26.
6. तत्रैव 116, पृ0 27.
7. तत्रैव 116, पृ0 28.
8. आदिपर्व 116, पृ0 29-31,117 पृ0 28-29, 90 , पृ0 75,, 118, पृ0 21-22.
9. एरण का स्तंभ लेख गुप्त संवत 191 (510ई0)।
10. राय, उदय नारायण, गुप्त सम्राट और उनका काल पृ0 724..
11. मृच्छकटिक अंक 10.
12. कादम्बरी पूर्वार्द्ध पृष्ठ 503..
13. हर्षचरित पाचवां उच्छवास, पृ0 276.
14. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द्र, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (600-1200)ई0) पृ0 56..
15. हर्ष, नायानन्दम् पृ0 146..
16. द्विवेदि एच0एन0 ग्वालिय्र राज्य के अभिलेख, पृ0 3, गीता गुप्ता, अभिलेख के आधार पर पर् परमारों का सांस्कृतिक इतिहास (शोध प्रबन्ध) पृ0 164.
17. कथासरित्सायर 12, 21 पृ॰ 34-55, तुलनीय वेंजर, ओस़ेन ऑफ स्टोरी जिल्द 7 पृष्ठ 38.
18. कथासरित्सायर 27, पृ0 80-102, प्रसाद, एस0 एन0, कथाप्ररित्सायर तथा भारतीय संस्कृति 1978, पृ0 110.
19. सचाऊ, अल्बेरूनीज इंडियाः जिल्द 2, पृ0 155..
20. व्यास स्मृति 2, पृ0 55, योगिनीतंत्र 2,10, पृ0 302-308; इलियट एवं डगलस, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स भाग 1, पृ0 6.
21. इंसक्रिप्सन्स ऑफ नार्दन इण्डिया नं0 107..
22. तत्रैव नं0 407.
23. शर्मा, दशरथ, चौहान सम्राट पृथ्वीराज तृतीय और उनका युग पृ0 56..
24. इंसक्रिप्सन्स ऑफ नार्दन इण्डियाः नं0 423..
25. शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज पृ0 289-91..
26. सिंह, रघुनाथ, कल्हणकृत राजतरंगिणी भाग 2, पृ0 227, पाद टिप्पणी 2 एवं पृ0 418-19.
27. धनपाल, तिलकमंजरी पृ0 156, राजशेखर के काल निर्णय के लिए द्रष्टव्य,विद्याभवन संस्कृत गद्य माला 12, कर्पूरमन्जरी प्रस्तावना, पृ0 10, एफिग्रैफिका इण्डिका जिल्द 2, पृ0 4 श्लोक 12.

28. गुप्ता, गीता, पूर्व निर्दिष्ट, पृ0 164.

29. स्थानांग0 टीका 4, पृ0 199..

30. आंगिरस, स्मृति चॉद्रेका भाग 3, पृ0 994-97..

31. शर्मा, दशरथ, चौहान सम्राट पृथ्वीराज तृतीय और उनका युग, पृ0 56..

32. राजतरंगिणी 7, पृ0 478..

33. तत्रैव 5, पृ0 128.

34. तत्रैव 5, पृ0 227.

35. गुप्ता, गीता, अधिलेखों के आधार पर परमारों का सांस्कृतिक इतिहास शोध प्रबंध, पृ0 163-64..

36. विस्तृत विवरण के द्रष्टव्य, जी0 याजदानी, दकन का प्राचीन इतिहास पृ0 248-289..

37. शात्त्री, नीलकंठ, चोल वंश पृ0 427-28..

38. तिरुवालंगाडु ताम्रपत्र छंद 65-66..

39. शास्त्री, नीलकंठ, चोलवंश पृ0 428. .

40. साउथ इंडियन इंसक्रिप्सन्स 2 पृ0 73.

41. शास्त्री, नीलकंठ, चबोलवंश पृ0 479.

42. एपिग्रैफ़िआ कर्नाटका जिल्द 4, पृ0100. एफिग्रैफ़िआ इंडिका जिल्द 6, पृ0 213-19.

43. एपिग्रैफ़िआ कर्नाटका जिल्द-9, शास्त्री, नीलकंठ, चोलवंश पृ0 428 पर उद्धृत ।

44. एपिग्रैफ़िआ कर्नाटका जिलुद 10, शास्त्री, नीलकंठ, उपर्युक्त |

45. एपिग्रेफ़िआ कर्नाटका जिलुद 4, पृ0 100.

46. एनुअल रिपोर्ट आफ एपिग्रैफ़ी मद्रास 1907, भाग 2 पृ0 41 विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य, शास्त्री, नीलकंठ, चोलवंश पृ0 428.

Corresponding Author

Anubha Singh*

Researcher, Post-Graduate History Department, Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar

anubhasingh.04@gmail.com